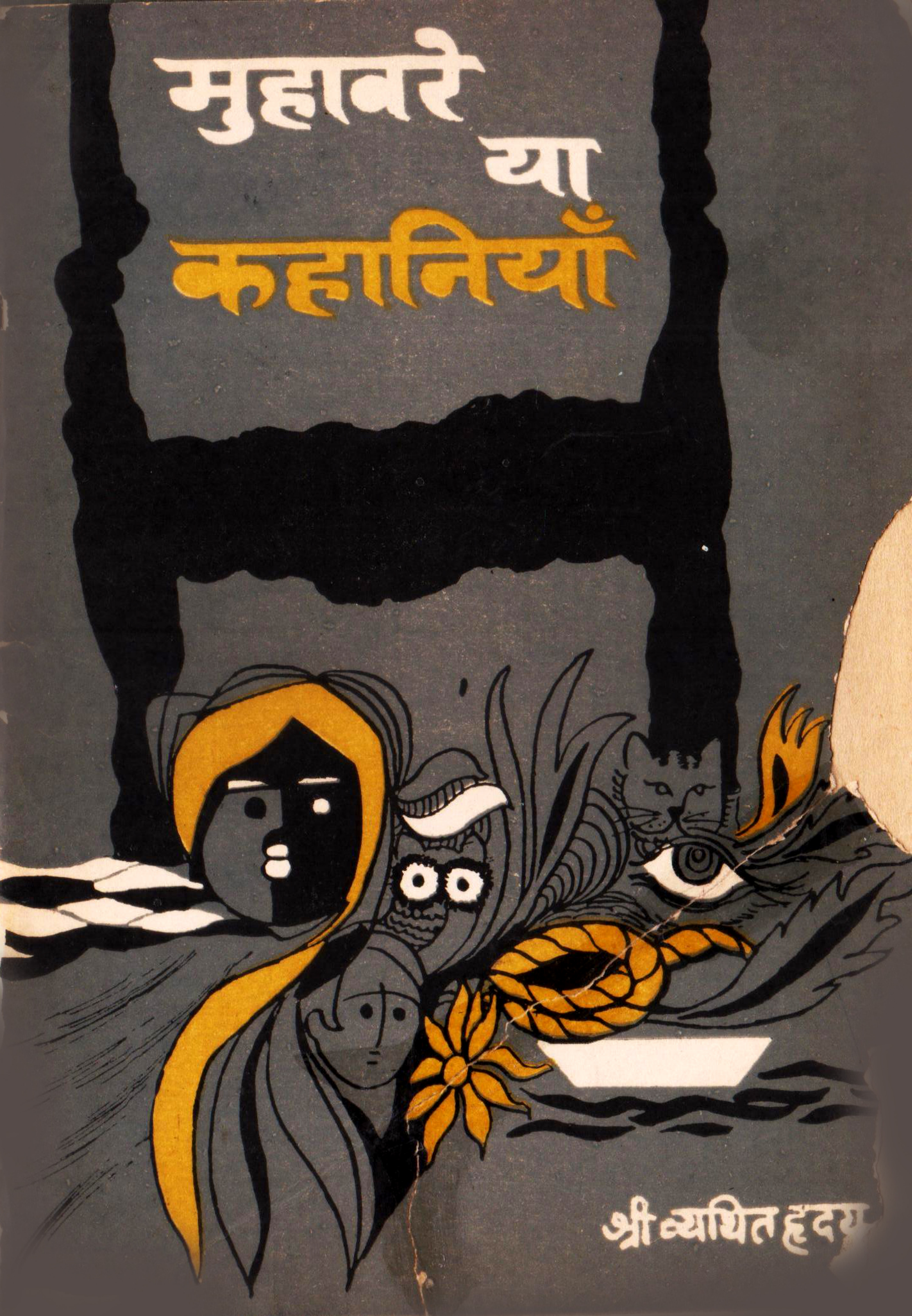
मुहावरे या कहानियाँ



श्री व्यथित हृदय

मुहावरे या कहानियाँ

श्री व्यथित हृदय

संजीव प्रकाशन, नई दिल्ली-२

करण : सन् 1994 / मूल्य : 15 , रुपय
ाशक : संजीव प्रकाशन, ३६१३, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२
क : प्रिंट आर्ट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

havare Ya Kahaniyan : Shri Vyathit Hridaya : Rs. 15.00

दो शब्द

छोटे-छोटे बालकों की हिन्दी की किताबों में प्रायः मुहावरे आते ही रहते हैं। जब मुहावरे आते हैं, तो बालक कठिनाई में पड़ जाते हैं; क्योंकि मुहावरों में छिपे हुए गहरे अर्थ उनकी समझ से बाहर होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक बालकों की इसी कठिनाई को दूर करने के उद्देश्य से लिखी गई है, इसमें मुहावरों के अर्थ तो समझाये ही गये हैं, अर्थों को साफ करने के लिए कहानियों की रचना भी की गई है। कहानियों की भाषा सरल और सरस है।

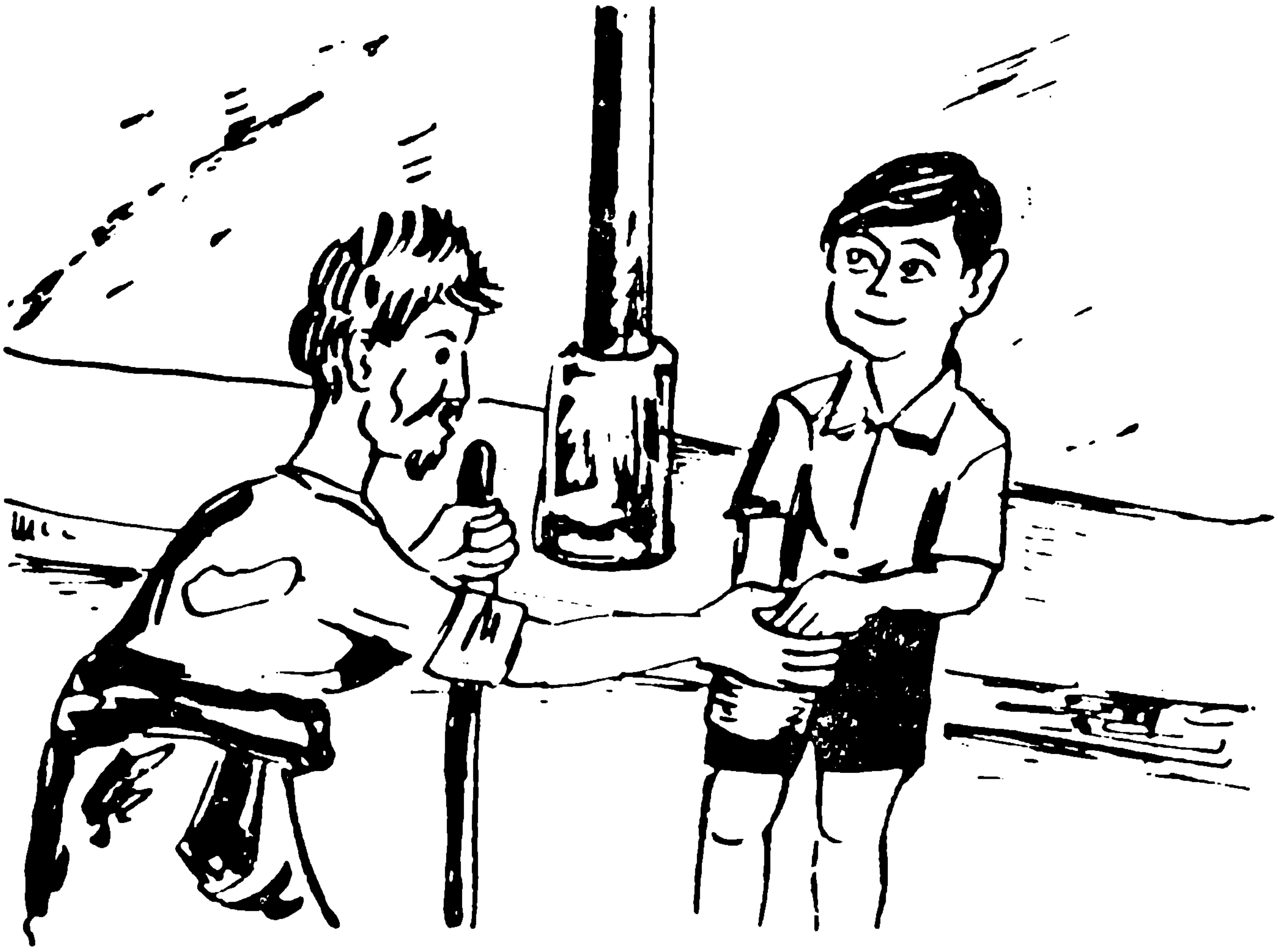
हमारा विश्वास है कि यह पहली पुस्तक होगी, जो कहानी में मुहावरों पर लिखी गई है। आशा है, हमारे छोटे छोटे बालक इस पुस्तक को चाव से पढ़ेंगे, समझेंगे और इससे लाभ उठाएंगे।

विनीत

श्री व्यथित हृदय

क्रम

कर भला, हो भला



एक नगर में एक व्यापारी रहता था। व्यापारी का नाम उपेन्द्र था। उपेन्द्र कपड़े का व्यापार करता था। वह बुरा आदमी तो न था, पर अपने व्यापार में चतुराई से काम अवश्य लिया करता था।

उपेन्द्र प्रतिदिन सवेरे मन्दिर में जाकर भगवान् की मूर्ति का दर्शन किया करता था। जाड़ा हो, गर्मी हो, बरसात हो, उपेन्द्र सवेरे मन्दिर में अवश्य जाया

करता था।

जाड़े के दिन थे, सवेरे का समय। उपेन्द्र भगवान् की मूर्ति का दर्शन करके मन्दिर की सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था। सबसे निचली सीढ़ी के पास एक वृद्ध भिखारी लाठी के सहारे खड़ा था।

वृद्ध भिखारी ने उपेन्द्र के सामने हाथ फैलाकर कहा—"कर भला, हो भला!"

उपेन्द्र खड़ा होकर सोचने लगा, "कर भला, हो भला। जो अच्छा काम करता है, दूसरों की भलाई करता है, उसकी भी भलाई होती है। उस दिन उपेन्द्र का इन्कम-टैक्स का मुकदमा था। उसे लगता था, मुकदमे का फैसला उसके पक्ष में न होगा। उसने सोचते-सोचते वृद्ध भिखारी के हाथ पर दस पैसे रख दिए।

वृद्ध भिखारी ने उपेन्द्र की ओर देखते-देखते कहा, "कर भला, हो भला!"

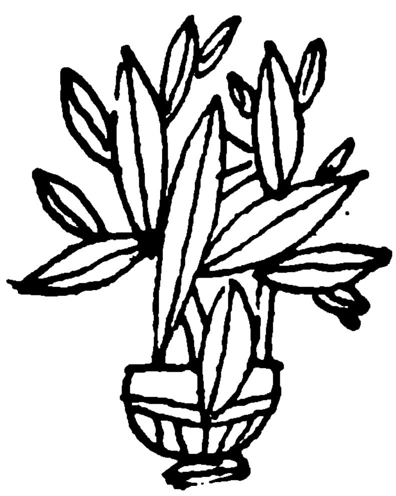
उपेन्द्र चला गया। वह खा-पीकर समय पर न्यायालय में पहुँचा। वह मन-ही-मन डर रहा था, कहीं ऐसा न हो, फैसला उसके विरुद्ध हो, उसे जुर्माने की सजा भोगनी पड़े।

पर जब मुकदमा पेश हुआ, तो सब कुछ सुनने के

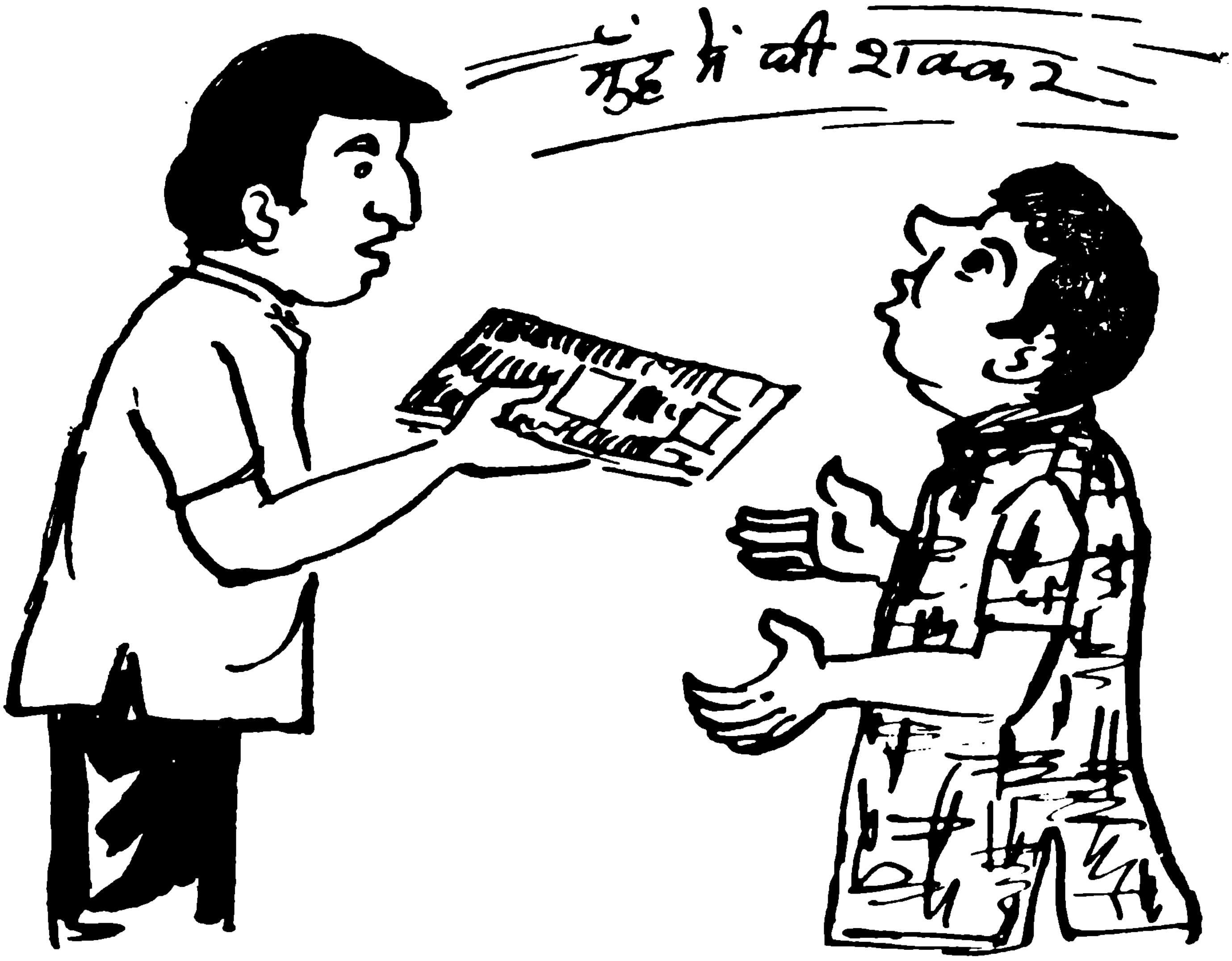
बाद हाकिम ने फैसला उपेन्द्र के पक्ष में सुनाया।

उपेन्द्र प्रसन्न हो उठा। उस दिन से उसकी 'कर भला, हो भला' में अधिक आस्था हो गई। वह बात-बात में कहने लगा, 'कर भला, हो भला'। केवल कहने ही नहीं लगा, उसे आचरित भी करने लगा, व्यवहार में भी लाने लगा।

एक बहुत बड़े सन्त ने भी यही कहा है—"कर भला, हो भला!"



मुँह में घी-शक्कर



रमेश आठ-नौ वर्ष का बालक था। वह स्कूल में पांचवीं कक्षा में पढ़ता था। उसकी पढ़ने-लिखने और कहानी सुनने में अधिक रुचि थी। वह पुस्तकों से कहानियाँ तो पढ़ा ही करता था, अपने बड़े लोगों से सुना भी करता था।

सवेरे के बाद का समय था। रमेश की माँ उसे घी में शक्कर मिलाकर खिला रही थी। उसका

विश्वास था, घी में मिलाकर शक्कर खाने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।

रमेश ने घी और शक्कर खाते-खाते कहा—"माँ, यह तो बड़ा मीठा है।"

माँ ने उत्तर दिया—"हाँ, बड़ा मीठा है। जिस तरह मुँह में घी-शक्कर मीठा लग रहा है, उसी तरह सुखद बात भी बड़ी मीठी लगती है। इसीलिए तो जब कोई सुखद बात सुनाता है, तो लोग कहते हैं, 'तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर।'

रमेश सोचने लगा, उसने सोचते-सोचते कहा—"माँ, 'मुँह में घी-शक्कर' पर क्या तुम कहानी नहीं सुनाओगी ?"

माँ ने उत्तर दिया—"हाँ-हाँ, क्यों नहीं ? लो सुनो—

सतीश और हरीश दो विद्यार्थी थे। दोनों में बड़ी मित्रता थी। दोनों एक ही गाँव में रहते थे, एक ही स्कूल में पढ़ते थे। सतीश ने हाई स्कूल की परीक्षा दी थी। हरीश ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ता था।

जून के महीने का प्रथम सप्ताह था। हरीश शहर से लौटकर आया था। उसने सतीश के पास जाकर कहा—"सतीश, तुमने कुछ सुना ? तुम पास हो गए

हो।"

सतीश ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर। तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

हरीश ने उत्तर दिया—"मैं शहर गया था। मैंने शहर में अखबार में तुम्हारा रोल नम्बर देखा था। अखबार मैं साथ लाया हूँ। यह देखो।"

हरीश ने अखबार निकालकर उसमें सतीश को उसका रोल नम्बर दिखाया। सतीश प्रसन्न होकर हरीश के गले से लिपट गया, बोला—"अब क्या कहूँ ? मुँह में घी-शक्कर या और कुछ।"

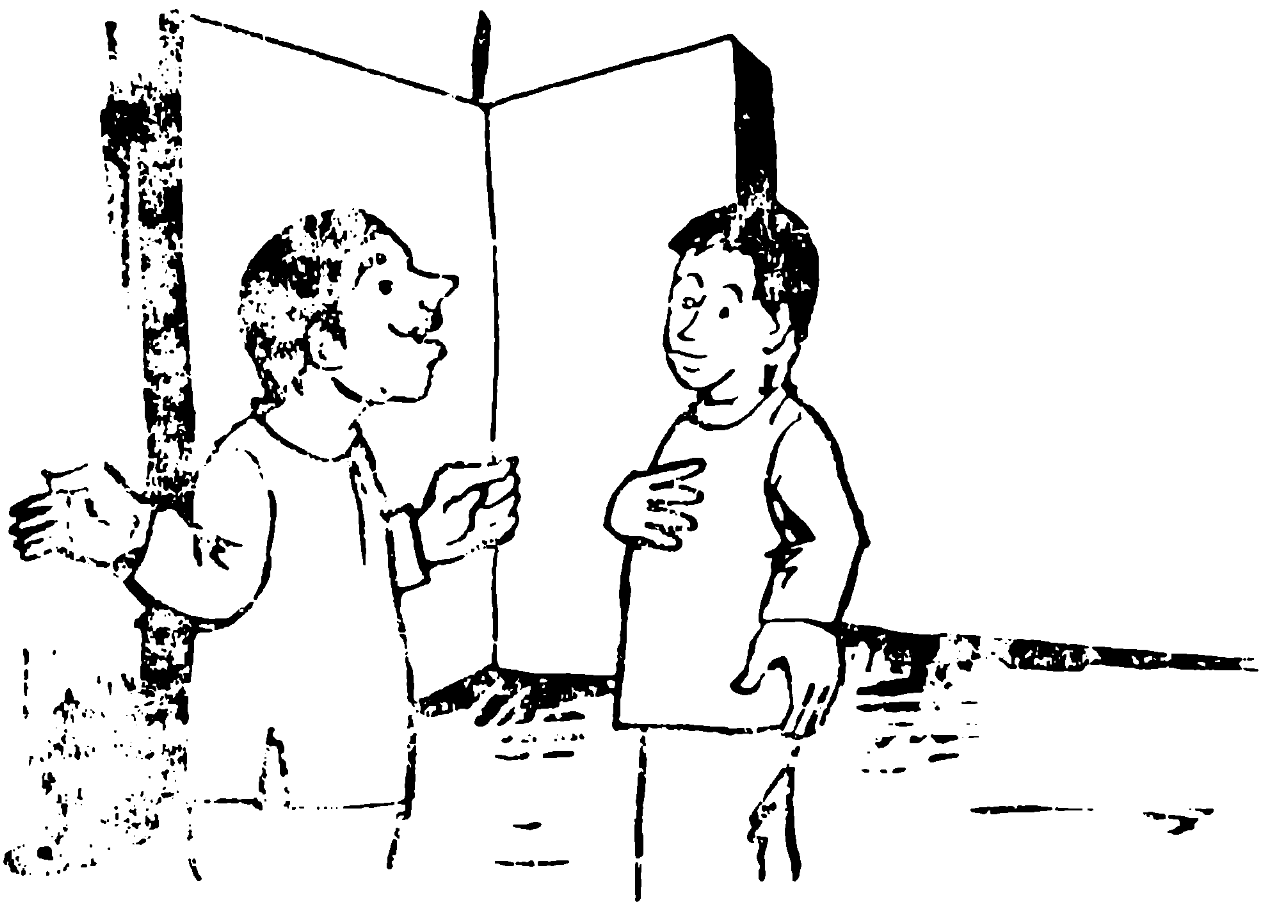
हरीश बोल उठा—"अरे अब कहो नहीं, घी-शक्कर खिलाओ।"

तदुपरान्त सतीश और हरीश दोनों एक-दूसरे से लिपटकर नाचने लगे, गा-गाकर कहने लगे—'मुँह में घी-शक्कर', 'मुँह में घी-शक्कर'।

रमेश की माँ ने कहानी खत्म करते हुए कहा—"सचमुच, सुखद बात घी-शक्कर के समान मीठी लगती है।"

रमेश कहानी सुनकर बोला—"अब जो मुझे सुखद बात सुनाएगा, मैं भी उसके लिए कहा करूँगा, तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर, तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर।"

गूलर के फूल



सुरेश के मामा का नाम मोहनलाल था। मोहन-लाल वाराणसी में रहता था। वह अपने भानजे सुरेश को बहुत प्यार करता था।

सुरेश प्रायः अपने मामा के घर जाया करता था। जब भी जाता था, दस-पन्द्रह दिनों तक टिका रहता था।

एक बार ऐसा हुआ, सुरेश कई महीनों तक अपने

मामा के घर नहीं गया। कई महीनों बाद एक दिन जब गया, तो उसके मामा ने उसे देखते ही कहा—"अरे भाई ! तुम तो गूलर के फूल हो गए।"

सुरेश हँस पड़ा। वह स्वयं तो कुछ न बोला, पर उसके मामा के छोटे लड़के विनय मे कहा—"पिताजी सुरेश भाई गूलर के फूल किस तरह हो गए ?"

सुरेश का मामा हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा, "सुरेश गूलर का फूल नहीं हो गया। मैंने उसे गूलर का फूल इसलिए कहा कि वह बहुत दिनों के बाद दिखाई पड़ा। अगर कोई मित्र या प्रेमी अपने मित्र या प्रेमी को बहुत दिनों के बाद मिलता है, तो वह इसी तरह कहता है कि अरे भाई, तुम तो गूलर के फूल हो गए। लो, मैं तुम्हें एक कहानी सुनाकर इस बात को और साफ किए दे रहा हूँ—

मोहन और सोहन--दोनों एक ही कॉलिज में पढ़ते थे। दोनों अलग-अलग गाँव और अलग-अलग जाति के थे, पर दोनों में बड़ी घनिष्ट मित्रता थो। दोनों कॉलिज के होस्टल में एक ही कमरे में रहते थे।

दोनों ने साथ-ही-साथ ऊँची शिक्षा की डिग्री प्राप्त की।

दोनों कॉलिज से निकलकर अपने-अपने गाँव चले

गए। पर फिर भी दोनों एक-दूसरे से मिला करते थे, एक-दूसरे के प्रति स्नेह प्रकट किया करते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि कई महीने तक दोनों एक-दूसरे से न मिले। मोहन तो अपने गाँव में ही रहा, पर सोहन कलकत्ते चला गया। वहाँ वह एक मिल में नौकर हो गया।

कई महीने बाद सोहन अपने गाँव गया। गाँव जाने पर वह मोहन के गाँव भी गया।

मोहन ने सोहन को देखते ही कहा—'अरे भाई, तुम तो गूलर के फूल हो गए। जानते हो, आज कितने दिनों के बाद मिले ?'

सोहन ने उत्तर दिया—'हाँ, जानता हूँ। कलकत्ते चला गया था। एक मिल में नौकर हो गया हूँ। जिस तरह मैं तुम्हारे लिए गूलर का फूल बन गया हूँ, उसी तरह तुम भी तो मेरे लिए गूलर के फूल बन गए हो।'

मोहन और सोहन—दोनों एक-दूसरे से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए।

कहानी को सुनकर विनय ने कहा—"अब मैं भी अपने उस मित्र से, जो बहुत दिनों बाद मुझे मिलेगा, कहूँगा—"अरे भाई, तुम तो गूलर के फूल बन गए।"

सुरेश के मामा ने कहा—"हाँ, तुम ठीक ही कहोगे।

इसी तरह बहुत दिनों बाद या कठिनाई से दिखाई पड़ने वाले प्रेमियों के लिए लोग 'दूज का चाँद' भी कहते हैं। दूज का चाँद बड़ी कठिनाई से, बहुत ढूंढने पर आकाश से देखा जाता है।"

'गूलर के फूल' और 'दूज के चाँद' के बारे में जान कर विनय को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सुरेश की ओर देखते हुए कहा—"सुरेश, आप बहुत अच्छे हैं। आप अगर 'गूलर के फूल' और 'दूज के चाँद' न बनते, तो मैं यह समझ नहीं पाता कि लोग 'गूलर के फूल' और 'दूज के चाँद' का प्रयोग क्यों करते हैं।"

सुरेश और उसका मामा—दोनों चकित होकर विनय की ओर देखने ही नहीं लगे, मन-ही-मन उसकी प्रशंसा भी करने लगे।

ऊँट के मुँह में जीरा



एक नगर में एक पहलवान रहता था। पहलवान का नाम जेठामल था। जेठामल पहलवानी में प्रसिद्ध तो था ही, खाने में भी बड़ा शूर था।

जेठामल प्रतिदिन आठ-नौ सेर दूध पी लिया करता था। साथ ही बीस-पच्चीस रोटियाँ खा जाया करता था। शाक-सब्जी, फल और सूखे मेवे इससे अलग थे।

जेठामल की पहलवानी और उसके अधिक खाने

की बात दूर-दूर तक फैली हुई थी।

एक दिन जेठामल अपने बहनोई के घर गया। बहनोई के छोटे भाई की नई-नई बहू आई थी। उस दिन उसी ने खाना बनाया था। वह बुद्धिमान तो थी, पर यह नहीं जानती थी कि उसकी जेठानी का भाई खाने में बड़ा शूर है।

खाने का समय हुआ। जेठामल अपने बहनोई के साथ खाने के लिए बैठा। बहू ने जिस तरह साधारण भोजन अपने जेठ के लिए परोसा, उसी तरह जेठामल के लिए भी।

जेठामल के बहनोई ने उसकी थाली की ओर देखते हुए कहा—"अरे बहू, यह तुमने क्या किया? यह तो मेरे साले के लिए ऊँट के मुँह में जीरा के समान है।"

जेठामल और उसका बहनोई—दोनों खिलखिला कर हँस पड़े। रसोईघर के भीतर से भी हँसने की आवाज आई।

बहू होशियार थी। उसने झट मलाईदार दूध से भरे हुए कटोरे में पन्द्रह-बीस रोटियाँ डालकर कटोरा जेठामल के सामने रख दिया।

जेठामल हँस पड़ा। उसका पेट भरा या नहीं, पर

पर जब वह खाकर उठा, तो उसने बड़े जोर से डकार अवश्य ली।

जेठामल के बहनोई का छोटा लड़का गणेश पास ही खड़ा था। उसने हँसते हुए कहा—"ऊँट के मुँह में जीरा।"

जेठामल और उसका बहनोई दोनों हँस पड़े।

गणेश बोला—"पिताजी, यहाँ न तो कोई ऊँट है, न ऊँट के मुँह में जीरा है, फिर आपने यह क्यों कहा कि ऊँट के मुँह में जीरा।"

गणेश के पिता ने उत्तर दिया—बेटा, तुम्हारे मामाजी खाने में बड़े शूर हैं। तुम्हारी छोटी माँ ने उनके लिए जो खाना परोसा था, वह बहुत कम था।

तुम तो जानते ही हो कि ऊँट का मुँह बहुत बड़ा होता है। अगर कोई उसके मुँह में एक जीरा डाल दे, तो उसका उसे क्या पता चलेगा ?

जिस तरह ऊँट के मुँह में जीरे का पता न चलता, उसी तरह उस खाने का भी तुम्हारे मामा के पेट में पता न चलता। इसीलिए मैंने कहा—ऊँट के मुँह में जीरा।

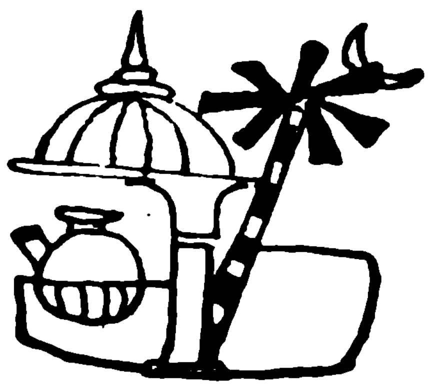
जब कोई अधिक खाने वाले आदमी को बहुत थोड़ा भोजन देता है, तो लोग यही कहते हैं, ऊँट के

मुँह में जीरा।

पिता की बात सुनकर गणेश हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा—

"आज से जब कोई अधिक खाने वाले आदमी को बहुत थोड़ा खाना देगा, तो मैं भी यही कहूँगा कि यह तो ऊँट के मुँह में जीरा के समान है।"

गणेश की बात सुनकर जेठामल और उसका बहनोई दोनों हँस पड़े। दोनों ने एक-साथ ही कहा—"तुम ठीक ही कहोगे, ठीक ही कहोगे।"



आँखों का तारा



मुकुन्द एक युवक था। वह कॉलेज की ऊँची कक्षा में पढ़ता था। वह रहने वाला तो एक गाँव का था, पर शहर में कॉलिज के होस्टल में रहकर पढ़ा करता था।

मुकुन्द के घर में वह, उसकी माँ, उसका पिता और उसकी एक छोटी बहन थी। यूँ तो सभी लोग मुकुन्द को बहुत प्यार देते थे, पर उसकी माँ तो उसे

अपने हृदय का टुकड़ा ही समझती थी।

क्वार का महीना था। दशहरे की छुट्टियाँ हो चुकी थीं। कॉलेज के होस्टल से सभी लड़के अपने-अपने घर जा चुके थे।

पर मुकुन्द अभी अपने होस्टल में ही था। उसने निश्चय किया था, वह ठीक दशहरे के दिन अपने घर जाने के लिए होस्टल छोड़ेगा।

दशहरे के एक दिन पहले की बात है। शाम के बाद रात का समय था। लगभग दस बज रहे थे। मुकुन्द रामलीला देखकर अपने होस्टल की ओर लौट रहा था।

सहसा मुकुन्द को एक दर्द-भरी चीख सुनाई पड़ी। वह दर्द-भरी चीख एक लड़की की थी, जिसे एक बुरा आदमी, अकेले में पाकर तंग कर रहा था।

मुकुन्द उस चीख को सुनकर आँधी के समान झपट कर लड़की के पास जा पहुँचा और उस बुरे आदमी से लड़की को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा।

बुरे आदमी ने लड़की को तो छोड़ दिया, पर तेज चाकू से मुकुन्द के पेट में बहुत बड़ा घाव कर दिया।

मुकुन्द को अस्पताल पहुँचाया गया। उसे बचाने

का बहुत प्रयत्न किया गया, पर वह बच न सका।

मुकुन्द की मृत्यु का समाचार जब उसके घर पहुँचा, तो उसके घर में कोहराम छा गया। मुकुन्द के पिता और उसकी बहन ने तो किसी तरह धैर्य धारण किया, पर उसकी माँ का शोक कम न हुआ। वह रोते-रोते अन्धी-सी हो गई।

मुकुन्द की माँ के शोक को देखकर अड़ोस-पड़ोस के लोग प्रायः कहा करते थे, मुकुन्द अपनी माँ की 'आँखों का तारा' था।

'आँखों का तारा' का प्रयोग बहुत अधिक प्रिय के लिए किया जाता है। इसी से मिलता-जुलता 'कलेजे का टुकड़ा' या 'हृदय का टुकड़ा' भी है।

किसी का जब कोई बहुत प्रिय भाई या लड़का मर जाता है, तो प्रायः लोग कहा करते हैं कि वह उसकी 'आँखों का तारा' था, उसके 'कलेजे का टुकड़ा' था।



कान का कच्चा



दो पड़ोसी थे। एक का नाम हर्ष और दूसरे का नाम विनोद था। हर्ष बड़ा समझदार था। जो करता था, सोच-समझकर करता था, पर विनोद बड़ा नासमझ था। किसी भी काम को करने में समझदारी नहीं बरतता था।

हर्ष और विनोद—दोनों के एक-एक लड़का था। दोनों के लड़के बराबर उम्र के थे, जो एक ही

स्कूल में पाँचवीं कक्षा में पढ़ते थे।

एक दिन जब दोनों लड़के स्कूल से लौट रहे थे, तो दोनों में परस्पर झगड़ा हो गया। पहले कहा-सुनी हुई, फिर मार-पीट तक हो गई।

दोनों लड़कों ने घर लौटकर, नमक-मिर्च लगाकर अपनी-अपनी माँ से शिकायत की। फिर तो दोनों की माताओं में भी खूब गाली-गलौच हुई।

शाम के समय हर्ष और विनोद भी अपने-अपने घर पहुँचे।

दोनों की स्त्रियों ने अपने-अपने पति से एक-दूसरे की खूब शिकायत की। हर्ष ने अपनी स्त्री की बात सुनकर कहा—"लड़के की शिकायत पर तुमने क्यों गाली-गलौच की ? लड़के आपस में लड़-झगड़कर, फिर मिल जाते हैं। लड़कों के झगड़ों को तूल नहीं देना चाहिए।"

पर विनोद अपनी स्त्री की बात सुनकर आग-बबूला हो गया। वह हाथ में लाठी लेकर हर्ष को गाली देता हुआ बाहर निकल आया।

विनोद बाहर निकलकर हर्ष को गालियाँ देने लगा; लड़ाई लड़ने के लिए उसे ललकारने लगा।

पर हर्ष कुछ न बोला। वह विनोद की गालियों

और ललकार को सुनकर मौन ही रहा।

विनोद की गालियों और उसकी ललकार को सुनकर आस-पास के लोग इकट्ठे हो गए।

हर्ष ने लोगों को बताया कि विनोद क्यों गालियाँ दे रहा है, क्यों ललकार रहा है और वह क्यों चुप है।

पड़ोसियों में से किसी ने कहा—"विनोद बड़ा मूर्ख है। वह विवेकहीन तो है ही, कान का कच्चा भी है।"

लोगों ने विनोद को डाँट-डपटकर शान्त कर दिया, कहा—"अरे भाई, लड़कों के झगड़े को तूल क्यों देते हो? स्त्री ने शिकयत की, यह ठीक है; परन्तु तुम्हें तो समझदारी से काम लेना चाहिए। जो लोग कान के कच्चे होते हैं, वह विपत्ति में फँसते हैं।"

लोगों के समझाने से बात विनोद की समझ में आ गई। वह मन-ही-मन सोचने लगा, यदि वह स्त्री की बात मानकर हर्ष से झगड़ा कर बैठता, तो कितना बड़ा नुकसान होता।

उस दिन से विनोद ने यह बात गाँठ में बाँध ली कि जो लोग कान के कच्चे होते हैं, उन्हें अवश्य एक दिन नुकसान उठाना पड़ता है।

□

आगबबूला



हरीश शहर में किराये का एक कमरा लेकर रहता था, एक मिल में काम करता था। अच्छा वेतन था। उसने खाना बनाने के लिए एक नौकर रख लिया था। वह खाना तो बनाता ही था, दूसरे आवश्यक कार्य भी किया करता था।

हरीश जब अपने काम पर चला जाता था, तो कमरे की कुँजी नौकर के पास ही रहती थी। हरीश को नौकर पर अटूट विश्वास था। स्वयं नौकर भी हरीश के प्रति बड़ी श्रद्धा रखता था।

इसका कारण यह था कि हरीश अपने समान ही नौकर के भी सुख-दुःख पर ध्यान दिया करता था।

हरीश अपने नौकर की कर्तव्यपरायणता से बड़ा सन्तुष्ट रहता था। इसलिए जब कभी मित्रों में नौकरों पर बातचीत चलती, तो हरीश अपने नौकर की बड़ी प्रशंसा किया करता था।

पर एक दिन ऐसा हुआ कि हरीश को विवश होकर अपने नौकर के प्रति क्रोध करना पड़ा।

बात यह हुई कि जब हरीश अपने काम पर चला गया, तो नौकर का बहनोई आ गया। वह उसके साथ बाजार चला गया। उसे बाजार में कुछ ऐसी जरूरी चीजें खरीदनी थीं, जिनकी खरीदारी के सम्बन्ध में वह आवश्यक जानकारी व समझ नहीं रखता था।

नौकर ने सोचा था, वह अपने बहनोई को जरूरी चीजें खरीदवाकर शीघ्र ही लौट आएगा, पर लेने-देने में देर हो गई। इतनी देर हो गई कि हरीश के लौटने का समय भी चला गया। उधर हरीश जब अपने समय पर घर लौटा, तो देखता क्या है, कमरे में ताला लगा हुआ है।

हरीश ने आस-पास के लोगों से नौकर के बारे में पूछताछ की; पर किसी से ठीक-ठीक कुछ पता न

चल सका। आखिर हरीश करता, तो क्या करता ? वह पास ही एक दुकान पर बैठकर नौकर के लौटने की राह देखने लगा।

कुछ देर बाद जब नौकर लौटकर आया, तो हरीश उसे देखते ही आगबूबला हो गया। उसे उल्टी-सीधी सुनाने लगा।

नौकर ने विनय के साथ कहा—"साहब, आप क्रोध न करें। गाँव से मेरा बहनोई आया था। मैं उसके साथ उसे जरूरी सामान खरीदवाने चला गया था। क्षमा कीजिए, अब ऐसा कभी न होगा।"

नौकर के विनय ने हरीश के आगबबूलेपन को शान्त कर दिया। उसने कुछ खीज-भरे स्वर में कहा—"जा, जा अपना काम कर। तुझे जानना चाहिए कि मैं कब काम पर से आता हूँ, कब काम पर जाता हूँ।"

नौकर यह कहता हुआ जल्दी-जल्दी कमरे का ताला खोलने लगा—"बहुत अच्छा साहब, बहुत अच्छा।"

हरीश होंठों में मुस्कराने लगा; वह रह-रहकर मुस्कराने लगा।

भीगी बिल्ली



नरेन्द्र दफ्तर में क्लर्की करता था। वह दफ्तर
ं काम तो कम, पर बातें अधिक किया करता था।

दफ्तर के कर्मचारी नरेन्द्र से प्रायः कतराते रहते
, क्योंकि वह स्वयं तो काम करता ही नहीं था,
सरों को भी काम नहीं करने देता था।

सोमवार का दिन था। दस बज रहे थे। इतवार
ी छुट्टी के बाद आफिस खुला था, काम बहुत था,

अतः कर्मचारी शीघ्र अपने-अपने काम में लग जाना चाहते थे।

पर नरेन्द्र की तो पुरानी आदत थी। वह दफ्तर में पहुँचते ही एक दूसरे क्लर्क से, जो अपने काम में लगा था, बोला—"अरे भाई, इतनी जल्दी क्या पड़ी है? काम करने को तो अभी सारा दिन पड़ा है। फिर कर लेना। पहले यह तो बताओ, कल की छुट्टी कैसे बीती?" क्लर्क ने नरेन्द्र की ओर बिना देखे हुए उत्तर दिया—"क्यों मेरा समय नष्ट करते हो? अभी बड़े बाबू आते होंगे। वे काम के बारे में पूछेंगे, तो क्या जवाब दूंगा?"

नरेन्द्र हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा—"क्यों बड़े बाबू को बदनाम करते हो? वे भला क्यों पूछने लगे? मुझे देखो। मैं कभी पूरा काम नहीं करता, पर वे मुझसे कभी नहीं पूछते।"

क्लर्क बोला—"तुमसे बड़े बाबू क्यों नहीं पूछते, यह तो मैं नहीं जानता, पर मैं काम न करूँगा, तो मेरी जान खा जायेंगे।"

नरेन्द्र फिर हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा—"बड़े बाबू से डरते हो? मेरी तरह रहो, कोई कुछ न कहेगा।"

नरेन्द्र अपनी बात खत्म कर ही रहा था कि तर के भीतर बड़े बाबू प्रवेश करते हुए दिखाई ।

बड़े बाबू को देखकर नरेन्द्र के मुख से अपने-प ही निकल पड़ा—"अरे ! बड़े बाबू !"

एक दूसरे क्लर्क ने नरेन्द्र की बात सुनकर धीरे कहा—"अभी तो तुम बड़े बाबू से न डरने की त कह रहे थे, पर उन्हें देखते ही भीगी बिल्ली बन । अजीब आदमी हो !"

भीगी बिल्ली बनने की बात बड़े बाबू के भी नों में जा पड़ी । उन्होंने उस क्लर्क की ओर देखते कहा—"यह भीगी बिल्ली की क्या बात कर हो ?"

क्लर्क ने उत्तर दिया—"श्रीमान्, यह नरेन्द्र है ? आप जब नहीं आए थे, तो बहकी-बहकी बातें रहा था, पर आपको देखते ही भीगी बिल्ली बन ा ।"

बड़े बाबू ने हँसते हुए कहा—"भीगी बिल्ली ाना भी एक गुण है । मैं नरेन्द्र को इसीलिए दफ्तर बनाये हुए हूँ कि वह भीगी बिल्ली बनने में बड़ा ा है ।"

बड़े बाबू की बात सुनकर सभी क्लर्क हँस पड़े।

नरेन्द्र झेंप-सा गया। उसने उस दिन से निश्चय किया कि अब वह बहकी-बहकी बातें कभी न करेगा। बहकी-बहकी बातें करना बहुत बुरा है। उन्हीं के कारण तो इस तरह भीगी बिल्ली बनना पड़ता है, जो और भी बुरा है।

चिकना घड़ा



एक गृहस्थ था। गृहस्थ का नाम सुखदेव था।

सुखदेव के कुटुम्ब में वह, उसकी पत्नी, उसका युवा पुत्र और उसके पुत्र की स्त्री थी। गृहस्थ खेती करता था और उसका युवा पुत्र उसके काम में मदद किया करता था।

यों तो गृहस्थी की गाड़ी बड़े मजे में चल रही थी, पर कभी-कभी सास और बहू में कलह हो जाने के

कारण सुख और शान्ति में विघ्न पड़ जाता था।

सास का स्वभाव तो कुछ नर्म था, पर बहू तेज मिजाज की थी। वह बात-बात पर झगड़े के लिए तैयार हो उठती थी।

गृहस्थ के लड़के ने बार-बार अपनी पत्नी को समझाया कि वह बेकार लड़ाई-झगड़ा न किया करे, पर वह अपनी आदत से बाज नहीं आती थी।

एक दिन दोपहर के पहले का समय था। लड़के की पत्नी एक साधारण-सी बात पर गर्म हो उठी। उसकी सास ने जब उसकी बात का जवाब दिया, तो उसकी गर्मी और भी अधिक बढ़ गई। वह अपनी सास को जली-कटी सुनाने लगी।

गृहस्थ घर में ही मौजूद था। वह बहू की जली-कटी बातों को सुनकर उसे समझाने लगा—"अरे बहू, क्यों बेकार झगड़ा बढ़ा रही हो ? मानता हूँ, तुम्हारी सास से कुछ भूल हो गई है, पर इस तरह झगड़े को तूल नहीं देना चाहिए। झगड़े से गृहस्थी बरबाद हो जाती है।"

पर गृहस्थी की बात का बहू के हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह बराबर जली-कटी सुनाती ही रही।

इसी समय गृहस्थ का लड़का आ गया। वह अपने पिता के समझाने-बुझाने और अपनी पत्नी की जली-कटी बातों को सुनकर बोला—"अरे बाबू, तुम इस मूर्ख को क्या समझा रहे हो ? यह चिकने घड़े की तरह है। तुम्हारे समझाने-बुझाने का इसपर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। चिकने घड़े जैसे लोग कठोर हृदय के होते हैं।"

गृहस्थ ने उत्तर दिया—"हाँ जानता हूँ, जिस तरह चिकने घड़े के ऊपर पानी की बूँद नहीं ठहरती, उसी तरह मूर्ख और कठोर हृदय के लोगों के ऊपर अच्छी बात का प्रभाव नहीं पड़ता। फिर भी प्रयत्न तो करना ही चाहिए ?"

गृहस्थ का लड़का खीज-भरे स्वर में बोला—"प्रयत्न करके देख लो। अगर प्रभाव ही पड़ता, तो लोग यह क्यों कहते कि यह चिकने घड़े के समान है, यह चिकने घड़े के समान है ?"

गृहस्थ लड़के की ओर देखने लगा; रह-रहकर देखने लगा। मन-ही-मन सोचने लगा—जो लोग चिकने घड़े के समान होते हैं, क्या सचमुच उनपर अच्छी बातों का प्रभाव नहीं पड़ता ?

□

तिल का ताड़



कमल किसी काम से बाजार गया था। जब वह घर लौटकर आया, तो उसने सुना कि उसके दोनों बड़े भाइयों में झगड़ा हो गया है। गाली-गलौच तो हुई ही, अलग रहने की नौबत तक आ गई है। कमल की माँ ने आँखों में आँसू भरकर उसे बताया— "पहले तो दोनों की पत्नियों में झगड़ा हुआ, फिर झगड़े की आग दोनों भाइयों के हृदय में भी जल

उठी। दोनों एक-दूसरे को गालियाँ ही नहीं देने लगे, मार डालने की धमकियाँ भी देने लगे। अब दोनों कहते हैं कि वह एक-दूसरे से अलग रहेंगे।"

कमल ने अपनी माँ से कहा—"तो फिर तुमनें उन दोनों से क्या कहा ?"

कमल की माँ ने उत्तर दिया—"मैंने उनसे कहा, जो माल-असबाब और जमीन-जायदाद है, मेरे पति की है। मैं अपने जीते-जी उसमें से किसी को कुछ न दूँगी। तुम दोनों अलग होना चाहते हो, अलग हो जाओ। अपना कमाओ, अपना खाओ।"

कमल ने कहा—"तुमने ठीक ही कहा, माँ।"

कमल ने शीघ्र ही दोनों भाइयों को बुलवाया। उसने भाइयों से कहा—"आप दोनों मुझसे उम्र में बड़े हैं, पर जब बड़े लोग गलती करते हों, तो छोटों को उन्हें समझाने का अधिकार है। आप दोनों ने अपनी-अपनी पत्नी के बहकावे में आकर 'तिल का ताड़' बना दिया। औरतों में झगड़ा हुआ, तो आप लोगों ने क्यों झगड़ा किया ? आप लोगों को चाहिए था कि उन्हें डाँट-डपट देते, पर डाँटने-डपटने की कौन कहे, आप तो आपस में लड़कर अलग रहने की बात सोचने लगे।"

दोनों भाइयों से कमल की बात का उत्तर देते न बना। दोनों के मस्तक झुक गए। कमल ने फिर कहा—"तिल का ताड़ बना देने से कोई लाभ नहीं होता। जो लोग छोटी-सी बात पर बहुत बड़ा हंगामा खड़ा कर देते हैं, उन्हें नुकसान उठाना पड़ता है।"

दोनों भाइयों ने कमल की ओर देखते हुए कहा—"भूल हुई, भाई ! अब ऐसा कभी न होगा।"

और सचमुच उस दिन के बाद वे फिर कभी आपस में नहीं लड़े। मन-मुटाव पैदा करने वाली छोटी-मोटी कहा-सुनी तो गृहस्थी में चला ही करती है, पर उसे लेकर उन्होंने लड़ने की भूल नहीं की। कैसे करते ? जान जो गए थे कि 'तिल का ताड़' बनाने से बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है।

दूध का धोया



रामपाल और सुखपाल—दोनों एक गाँव में अंड़ोस-पड़ोस में रहते थे। दोनों में सदा विरोध चला करता था। रामपाल खेती करता था और सुखपाल बैलगाड़ी चलाया करता था।

रामपाल और सुखपाल—दोनों में कभी-कभी कलह-विग्रह भी हो जाया करता था।

एक बार जब रामपाल और सुखपाल में झगड़ा

हुआ, तो रामपाल ने मुखिया के पास जाकर सुखपाल की शिकायत की, उसपर कई इल्जाम लगाए। जैसे—सुखपाल शराब बेचता है, जुआ खेलता है, चोरी करता है, दूसरों के खेत काटता है, आदि-आदि।

रामपाल ने मुखिया से प्रार्थना की, वह गाँव की पंचायत बुलाकर, सुखपाल को कड़े से कड़ा दण्ड दे।

रामपाल की प्रार्थना पर मुखिया ने पंचायत बुलाई। पंचायत में रामपाल और सुखपाल—दोनों बुलाए गए।

रामपाल तो पहले ही पहुँच गया, पर सुखपाल के पहुँचने में कुछ देर हुई।

रामपाल पंचायत में पहुँचकर सुखपाल पर इलजाम लगाने लगा—"सुखपाल बड़ा बुरा आदमी है। वह मार-पीट तो करता ही है, चोरी से शराब बेचता है, जुआ खेलता और चोरी करता है, दूसरों के खेत काटता है।"

रामपाल इलजाम लगा ही रहा था कि सुखपाल भी जा पहुँचा। उसने रामपाल के इलजाम को सुनकर, आवेश-भरे स्वर में कहा—"मैं चोरी से शराब बेचता हूँ, जुआ खेलता हूँ, चोरी करता हूँ, दूसरों के खेत काटता हूँ—इन सभी बातों का रामपाल के पास क्या

प्रमाण है ? मैं पूछता हूँ, क्या यह 'दूध का धोया' है ? अगर इसी तरह के इलजाम मैं इसपर भी लगाऊँ, तो ?"

सुखपाल की बात सुनकर पंचायत सन्नाटे में आ गई। कुछ लोगों ने कहा—"हाँ, सुखपाल ठीक ही तो कह रहा है। उसने जो इलजाम लगाये हैं, उसके लिए प्रमाण तो उसे देने ही पड़ेंगे। बिना प्रमाण दिए हुए, पंचायत यह फैसला कैसे कर सकती है कि सुखपाल बुरा आदमी है और रामपाल 'दूध का धोया' हुआ ?"

पर रामपाल एक भी प्रमाण न दे सका। उसने केवल बार-बार यही कहा कि सुखपाल बुरा आदमी है, वह शराब बेचता है।

आखिर मुखिया ने रामपाल का मुकदमा खारिज कर दिया। उसने कहा—"कोई आदमी बिना प्रमाण के अपने को 'दूध का धोया' और किसी दूसरे को बुरा आदमी नहीं कह सकता।"

नमकहलाल



एक लड़का था। लड़के का नाम महेन्द्र था। महेन्द्र छठी कक्षा में पढ़ता था।

इतवार का दिन था, सवेरे के बाद का समय। महेन्द्र अपनी हिन्दी की किताब पढ़ रहा था। उसका बड़ा भाई सुरेन्द्र उसके पास ही बैठा हुआ था।

महेन्द्र ने अपनी हिन्दी की किताब में पढ़ा—
"रामपाल का नौकर बड़ा नमकहलाल था।"

महेन्द्र ने अपने भाई से पूछा—"भइया, यह नमकहलाल किसे कहते हैं ?"

सुरेन्द्र ने उत्तर दिया--"किसी का खाना खाकर उसके प्रति विश्वासी होना, वफादार होना, कर्तव्य-परायण होना आदि नमकहलाल कहलाता है।"

महेन्द्र मन-ही-मन सोचने लगा।

सुरेन्द्र ने उसकी ओर देखते हुए पुनः कहा—"नमकहलाल के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए मैं तुम्हें एक कहानी सुना रहा हूँ।"

एक युवक था, जिसका नाम अनिल था। अनिल अपनी पत्नी के साथ किराये का एक मकान लेकर रहता था। दोनों एक फैक्टरी में काम करते थे। सवेरे खा-पीकर काम पर निकल जाते थे, फिर शाम को वापस लौटते थे।

दोनों ने खाना आदि बनाने के लिए एक नौकर रख लिया था। नौकर घर के दूसरे आवश्यक कार्य भी किया करता था।

एक बार अनिल अपनी पत्नी के साथ घूमने के लिए बंगलौर गया। जब वह बंगलौर जाने लगा, तो अपना घर अपने नौकर के सुपुर्द कर गया।

अनिल जब बंगलौर से लौटा, तो उसे पता चला

कि उसके घर में चोरी हो गई। पुलिस चोरी के अपराध में उसके नौकर को पकड़ ले गई।

अनिल शीघ्र ही पुलिस-स्टेशन गया। उसने इन्सपेक्टर से मिलकर कहा—"आपने मेरे नौकर को व्यर्थ ही गिरफ्तार किया है। मेरा नौकर बड़ा नमक-हलाल है, उसे छोड़ दीजिए। मैं उसे अच्छी तरह से जानता हूँ।"

इन्सपेक्टर करता, तो क्या करता? उसे नौकर को छोड़ देना पड़ा।

नौकर अनिल के चरणों पर गिर पड़ा। उसने कहा—"बाबू, मैं आपके उपकार को कभी नहीं भूलूँगा।"

अनिल ने नौकर की पीठ थपथपाते हुए कहा—"मैंने तुम्हारे साथ कुछ उपकार नहीं किया; यह तो तुम्हारी नमकहलाली का पुरस्कार है।"

अनिल के कथन से नौकर को प्रेरणा मिली, उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

सुरेन्द्र अपनी कहानी को खत्म करते हुए बोला कि जो लोग नमकहलाल होते हैं, वह इसी तरह आदर पाते हैं।

नमकहलाल का उलटा नमकहराम होता है। जो

लोग नमकहराम होते हैं, वह सदा घृणा और बुरी निगाह से देखे जाते हैं।

महेन्द्र कहानी सुनकर प्रसन्न हो उठा; बहुत-बहुत प्रसन्न हो उठा।



काठ की हाँडी



हरीश की परचून की छोटी-सी दुकान थी। आमदनी थोड़ी थी, पर परिवार बड़ा था, बड़ी कठिनाई से जीवन की गाड़ी आगे चल रही थी।

हरीश को प्रति मास अभाव का सामना करना पड़ता था। उसने अभाव को दूर करने के लिए बड़े यत्न किए, बड़े हाथ-पैर मारे, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। जीवन की कठिनाई ज्यों-की-त्यों बनी रही।

रोज-रोज के अभाव ने हरीश के मन में बुराइयाँ पैदा कर दीं। वह सामान कम तोलने लगा, रोजगार में हेराफेरी करने लगा। इससे उसे कुछ लाभ हुआ या नहीं, पर यह तो जरूर हुआ कि उसके मन में बुराइयों की जड़ मजबूत हो गई। वह किसी भी तरह अपने अभाव को दूर करने के लिए इधर-उधर की बातें सोचने लगा।

हरीश का एक मित्र था। मित्र का नाम सतीश था। सतीश बहुत बड़ा व्यापारी था। उसकी परचून की कई दुकानें थीं।

एक दिन हरीश ने सोचा, वह क्यों न सतीश से रुपये उधार लेकर अपनी दुकान को और बड़ी करे।

हरीश सतीश के घर जा पहुँचा। उसने उससे दो हजार रुपये देने के लिए प्रार्थना की।

सतीश ने बिना किसी सोच-विचार के, बिना किसी कागज-पत्र के हरीश को दो हजार रुपये दे दिए।

हरीश ने दो हजार रुपये अपनी दुकान में लगा कर लाभ तो कमाया, पर सतीश के रुपये न लौटाए।

कई महीने बीत गए। एक दिन हरीश पुनः सतीश के पास गया। उसने सतीश से पुनः दो हजार रुपये की

प्रार्थना की ।

सतीश ने उत्तर दिया—"भाई, काठ की हाँडी दूसरी बार नहीं चढ़ती । तुमने एक बार रुपया लेकर उसे अब तक लौटाया नहीं । तुमने अपना विश्वास खो दिया । अब मैं दूसरी बार तुम्हें रुपया नहीं दे सकता ।"

हरीश लज्जित हो गया । वह अपना-सा मुँह लेकर घर लौट गया ।

हरीश ने लज्जित होकर सतीश के दो हजार रुपये लौटा तो दिए ही, उसकी समझ में यह बात भी आ गई कि काठ की हाँडी दूसरी बार नहीं चढ़ती । अर्थात् एक बार जो आदमी अपना विश्वास खो देता है, दूसरी बार उसका विश्वास कोई नहीं करता ।

हरीश की इस नई समझ ने उसके अभाव को तो दूर नहीं किया, पर उसके मन में शान्ति अवश्य पैदा कर दी । वह अपनी थोड़ी-सी आमदनी में ही सुख शान्ति से जीवन बिताने लगा ।



सोने में सुगन्ध



एक गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मण की एक पुत्री थी। पुत्री बड़ी सुन्दर थी। सुन्दर तो थी ही, बड़ी गुणवती भी थी।

ब्राह्मण अपनी पुत्री का विवाह एक ऐसे युवक के साथ करना चाहता था, जो उसके समान ही सुन्दर, उसके समान ही गुणवान् हो।

ब्राह्मण ने अपनी पुत्री के लिए कई वर देखे,

पर उसका मन किसी पर न जमा। कोई सुन्दर था, तो गुणवान् नहीं था और कोई गुणवान् था, तो सुन्दर नहीं था।

ब्राह्मण अधिक चिन्तित हो उठा। वह सोचने लगा, अब क्या किया जाय ? बड़ी खोज की, बड़ी दौड़-धूप की, पर कहीं भी कोई योग्य वर नहीं मिला।

एक दिन दोपहर के बाद का समय था। ब्राह्मण चारपाई पर पड़ा-पड़ा अपनी पुत्री के विवाह के बारे में सोच-विचार कर रहा था। सहसा उसके कानों में आवाज पड़ी—"बहनोईजी !"

ब्राह्मण उठकर बैठ गया। उसने चारपाई से उठ कर देखा, उसका साला उसके कमरे में प्रवेश कर रहा था।

ब्राह्मण बोल उठा—"आओ-आओ ! कहो, इस दोपहरी में कहाँ से आ रहे हो ?"

ब्राह्मण के साले ने उत्तर दिया—"घर से ही आ रहा हूँ। मुझे पता है, आप मेरी भानजी के विवाह के लिए वर की खोज में जमीन-आकाश एक कर रहे हैं। एक लड़के का पता चला है। इसीलिए आपके पास आया हूँ।"

ब्राह्मण प्यार से अपने साले को चारपाई पर

बिठाता हुआ बोला—"बैठो-बैठो ! बताओ, वह लड़का कहाँ रहता है, क्या करता है ?"

ब्राह्मण के साले ने उत्तर दिया—"लड़का मेरे गाँव के पास ही एक गाँव में रहता है। एम०ए० पास है, प्रोफेसर है ! माँ-बाप, घर-द्वार, भाई-बहन सब हैं, जमीन-जायदाद भी है, देखने में भी बड़ा अच्छा है। कहिए, तो बात चलाऊँ ?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"यह सब तो है। बताओ लड़का गुणवान् भी है, चरित्रनिष्ठ भी है, धार्मिक भी है ?"

ब्राह्मण के साले ने उत्तर दिया—"हाँ, वह प्रोफेसर तो है ही, बड़ा धार्मिक और चरित्रनिष्ठ भी है। आज के युग में पढ़ाई-लिखाई के साथ चरित्र-निष्ठता का होना बड़ा कठिन है, पर उसमें यह दोनों ही बातें हैं।"

ब्राह्मण उमंग के साथ बोल उठा—"देखने में सुन्दर, एम०ए० पास, प्रोफेसर और चरित्रनिष्ठ ! तब तो सोने में सुगन्ध है। जरूर बात आगे बढ़ाओ। अगर बात तय हो गई, तो मैं अपनी पुत्री का विवाह इसी लड़के के साथ करूँगा।"

ब्राह्मण की पत्नी के कानों में भी यह बात पड़ी।

उसने ब्राह्मण के पास पहुँचकर कहा—"यह सोने में सुगन्ध की बात क्या कर रहे हो ?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"तुम तो जानती ही हो, सोना बड़ा कीमती होता है। लोग उसे बहुत अच्छा समझते हैं, पर उसमें सुगन्ध नहीं होती। यदि उसमें सुगन्ध भी होती, तो उसकी कीमत कितनी अधिक बढ़ जाती ! इसी तरह अगर किसी आदमी में पढ़ाई-लिखाई और सुन्दरता के साथ-ही-साथ चरित्रनिष्ठता के गुण हो, तो वह अधिक गौरववान् बन जाता है।"

इसी तरह के एक लड़के का पता चला है, उसने पढ़ाई-लिखाई तो की ही है, वह सुन्दर और चरित्र-निष्ठ भी है। इसीलिए मैंने कहा, "सोने में सुगन्ध है।"

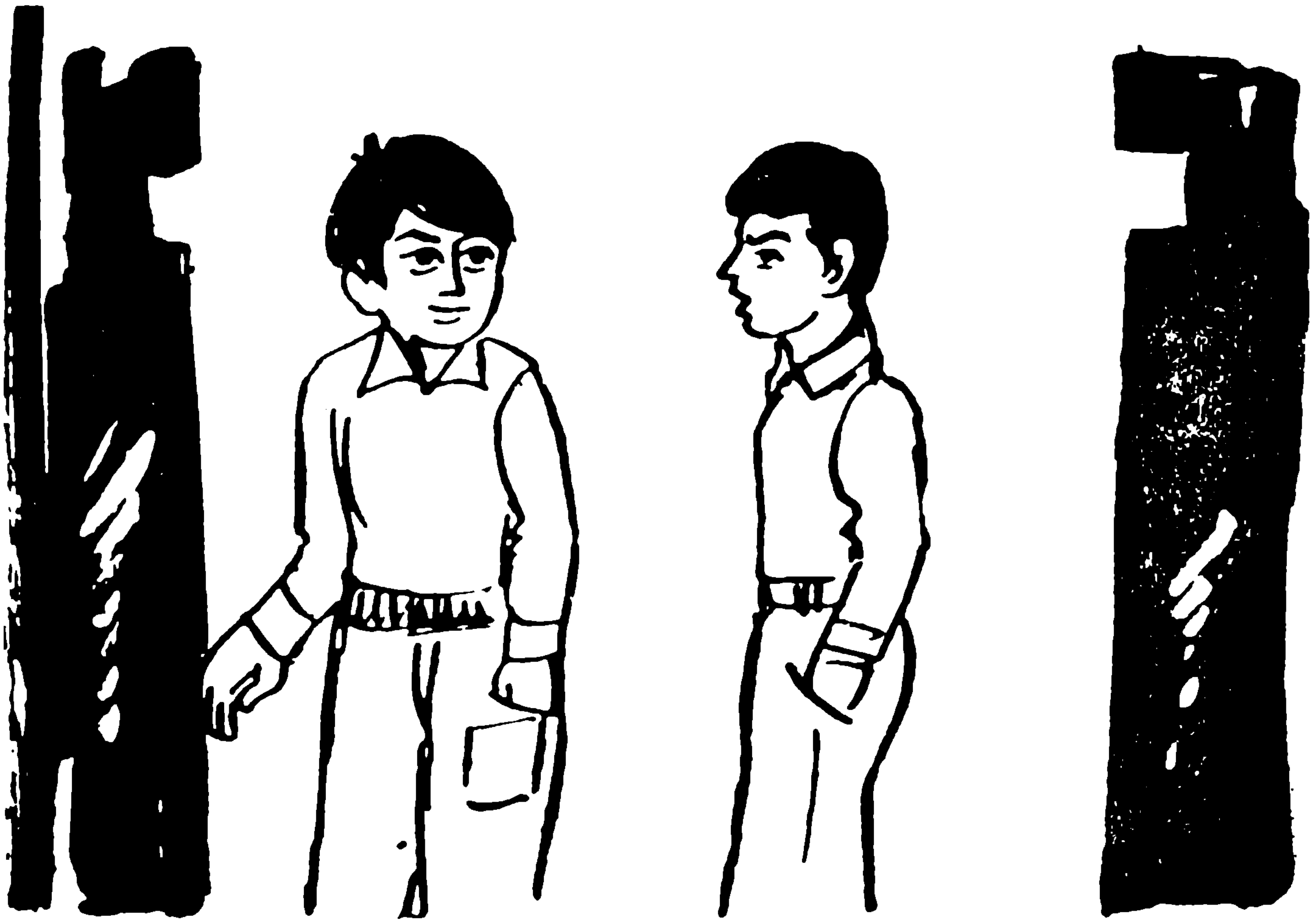
ब्राह्मण की स्त्री ने उमंग-भरे स्वर में कहा—"तब फिर देर क्यों करते हो ? आज अभी भाई के साथ रवाना हो जाओ। उस लड़के के साथ विवाह की बात-चीत आगे चलाओ।"

ब्राह्मण ने कहा—"हाँ, अभी जा रहा हूँ। आज ही उस लड़के के पिता से मिलकर बातचीत आगे चलाऊँगा।"

ब्राह्मण अपने साले के साथ चारपाई से उठ पड़ा। दोनों उस लड़के के गाँव की ओर चल पड़े।

ब्राह्मण ने मन-ही-मन भगवान् से प्रार्थना की—"भगवान् करे, यह लड़का हाथ से न जाए।"

कागज की नाव



रमेश छह-सात वर्ष का एक बालक था। सातवीं कक्षा में पढ़ता था।

इतवार का दिन था, सवेरे के बाद का समय। रमेश एक बड़े कठौते में पानी रखकर, कागज की बनी हुई नाव चला रहा था; कह रहा था—"चली रे, चली रे, मेरी नाव चली रे!"

सहसा रमेश के पिता सुरेन्द्रमोहन आ गए।

उन्होंने रमेश को कठौते के पानी में कागज की नाव चलाते हुए देखकर कहा—"तू यह क्या कर रहा है ?"

रमेश ने उत्तर दिया—"पिताजी, मैं कागज की नाव चला रहा हूँ। मैं इस नाव पर बैठकर अमेरिका जाऊँगा।"

रमेश के पिता हँस पड़े। उन्होंने हँसते हुए कहा—"तू बड़ा नादान है। भला कोई कागज की नाव पर बैठकर अमेरिका जा सकता है ? तेरी कागज की बनी हुई नाव पानी में गल नहीं जाएगी ?"

रमेश मन-ही-मन सोचने लगा।

रमेश के पिता ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"कागज की नाव कभी नहीं चलती। कागज की बनी होने के कारण शीघ्र पानी में गल जाती है। जिस तरह कागज की बनी हुई नाव नहीं चलती, उसी तरह साधारण साधकों से बड़े-बड़े काम नहीं होते। इस बात को और अधिक साफ करने के लिए मैं तुम्हें एक कहानी सुना रहा हूँ। ध्यान से सुनो—

एक युवक था। युवक का नाम कौशलेन्द्र था। उसने जब अमेरिका के कुछ वीर पुरुषों के चाँद में उतरने की कहानी सुनी, तो उसने निश्चय किया, वह हिमालय की ऊँची चोटी पर चढ़ेगा।

कौशलेन्द्र हिमालय की ऊँची चोटी पर चढ़ने के लिए तैयारियाँ करने लगा।

एक दिन उसने अपने अभियान की बात अपने मित्र विमलेन्द्र को बताई। विमलेन्द्र उसकी बात को सुनकर हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा—"तुम हिमालय की चोटी पर चढ़ोगे?"

कौशलेन्द्र ने आश्चर्य के साथ कहा—"इसमें हँसने की बात क्या है? जब अमेरिका के लोग चाँद की धरती पर उतर सकते हैं, तो मैं हिमालय की चोटी पर क्यों नहीं चढ़ सकता?"

विमलेन्द्र ने उत्तर दिया—"तुम चढ़ तो सकते हो, पर यह तो बताओ, क्या तुम्हारे पास ऑक्सीजन का यन्त्र है? तुम्हारे पास शीत और बर्फ के कष्टों को रोकने वाले कपड़े हैं?"

कौशलेन्द्र ने उत्तर दिया—"नहीं, मेरे पास यह सब तो कुछ नहीं है।"

विमलेन्द्र बोला – "तब तो हिमालय पर चढ़ने का तुम्हारा यह प्रयत्न कागज की नाव चलाने के समान है। जिस प्रकार कागज की नाव नहीं चल सकती, उसी प्रकार ऑक्सीजन के यन्त्रों और उपयुक्त पोशाकों के बिना कोई हिमालय पर नहीं चढ़ सकता।"

विमलेन्द्र की बात से कौशलेन्द्र को कागज की नाव का अर्थ तो समझ में आ ही गया, साथ ही यह बात भी समझ में आ गई कि उपयुक्त साधनों के बिना कोई हिमालय की चोटी पर नहीं चढ़ सकता।

रमेश कहानी को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा—"पिताजी, अब मैं कागज की नाव नहीं चलाऊँगा। अब मैं ऐसी मजबूत नाव चलाऊँगा, जिस पर बैठकर मैं सचमुच अमेरिका जा सकूँ।"

रमेश के पिता ने उसकी पीठ ठोकते हुए कहा—"तुम्हें अवश्य ऐसा करना चाहिए, अवश्य ऐसा करना चाहिए।"

मिट्टी के माधो



एक गाँव में एक किसान रहता था। किसान का नाम सुखवीर था। सुखवीर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। वह किसी प्रकार अपना और अपने कुटुम्ब का निर्वाह कर रहा था।

सुखवीर की एक लड़की भी थी। लड़की विवाह के योग्य हो गई थी। उसने विवाह के लिए वर तो खोज लिया था, पर पास में रुपया न होने के कारण

िवाह टालता जा रहा था ।

वर के पिता को यह बात अच्छी नहीं लगी । सने सुखवीर पर दबाव डालना आरम्भ किया कि ह विवाह करे तो करे, नहीं तो सगाई तोड़ दे ।

आखिर सुखवीर विवश होकर एक महाजन के ास कर्ज लेने के लिए गया । वह महाजन के पास बैठ र उससे विनयपूर्वक कहने लगा—"साहजी, रुक्का नखाकर मुझे तीन हजार रुपये ऋण के रूप में दे ोजिए । मैं शीघ्र ही आपके रुपये लौटा दूँगा ।"

पर महाजन तैयार न हुआ । सुखवीर ने विनय-र्वक एक दूसरी प्रार्थना की—"रुक्के पर ऋण न ोजिए, तो मेरा खेत गिरवी रख लीजिए । मैं शीघ्र पना खेत छुड़ा लूँगा ।"

. पर फिर भी महाजन तैयार नहीं हो रहा था ।

सुखवीर हाथ जोड़ने लगा, प्रार्थना करने लगा, ह-रहकर महाजन की खुशामदें करने लगा ।

सुखवीर महाजन की खुशामदें कर ही रहा था क उसका पड़ोसी, जो महाजन के पास ही बैठा हुआ ा, बोला—"सुखवीर, ये मिट्टी का माधो है । तुम्हारी ार्थनाओं और खुशामदों से पिघलने वाला नहीं । ालो, मैं तुम्हें रुपये दूँगा । जैसे तुम्हारी लड़की, वैसे

मेरी लड़की ।"

सुखवीर आश्चर्य-चकित होकर पड़ोसी की ओर देखने लगा ।

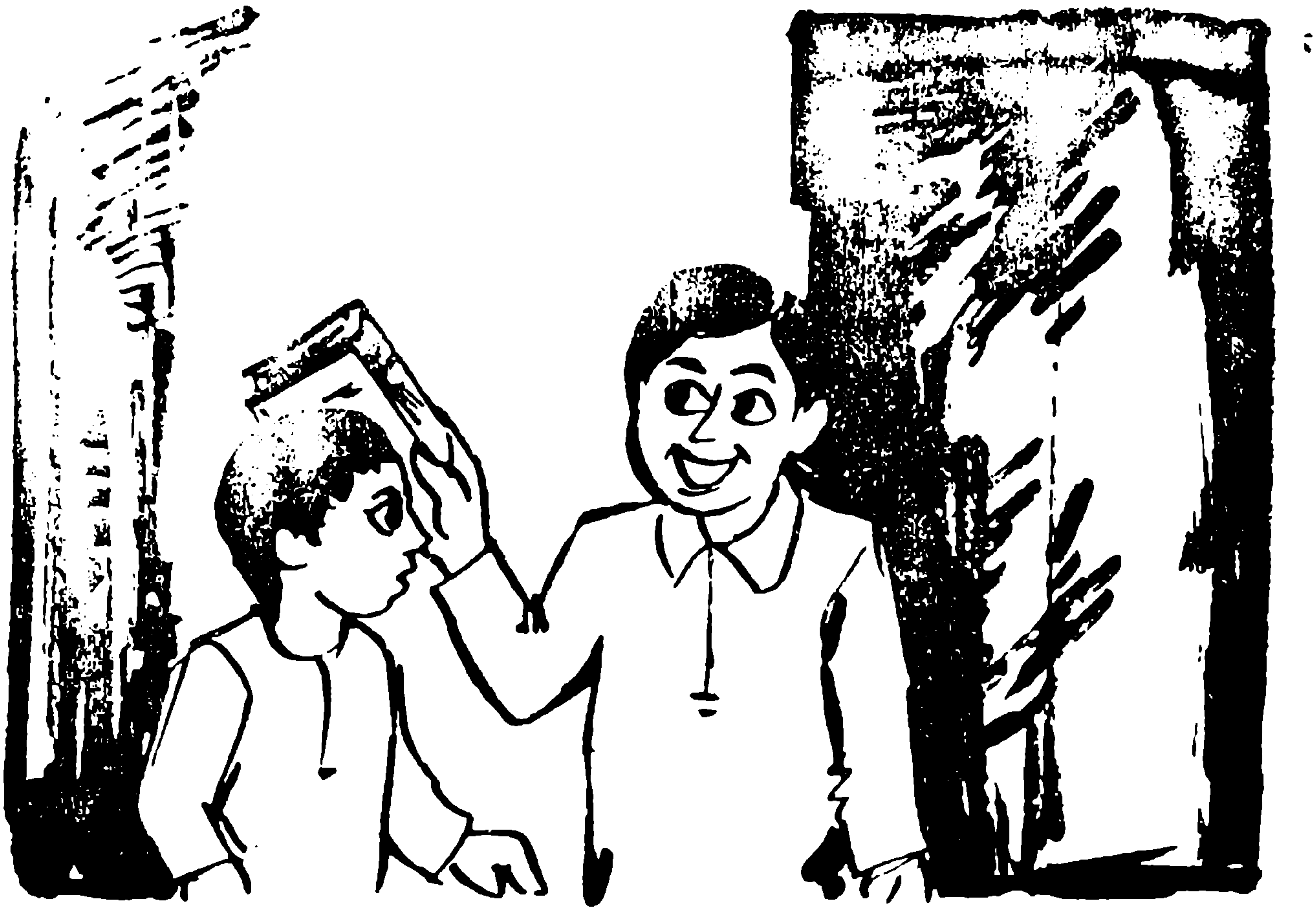
पड़ोसी ने फिर कहा—"मैं सच कह रहा हूँ । चलो, मैं तुम्हें रुपये दूँगा । मिट्टी के माधो की खुशामदें करने से काम नहीं चलता ।"

पड़ोसी और सुखवीर दोनों एक-साथ ही उठ खड़े हुए । पड़ोसी ने उठते हुए कहा—"सुखवीर, तुमने महाजन के पास आकर गलती की । तुमने इसे माधो समझ रखा था । अरे यह तो मिट्टी का माधो है, बहुरूपिया है ।

सुखवीर ने कुछ उत्तर न दिया । उत्तर देने के लिए उसके पास कुछ था ही नहीं । वह भीतर-ही-भीतर पड़ोसी के उपकार से गद्‌गद हो रहा था ।



गोबरगणेश



प्रमीला ने अपने पिता से पूछा—"पिताजी, गोबरगणेश का क्या अर्थ होता है ?"

पिता ने उत्तर दिया—"तुमने गणेशजी का नाम सुना होगा। गणेशजी विद्या और ज्ञान के देवता माने जाते हैं। पूजा-पाठ में उन्हें गणेशजी को लोग गोबर का बनाते हैं। गोबर के बने हुए गणेशजी भी क्या बहुत बड़े ज्ञानी और विद्वान् होते हैं ? नहीं, गोबर

के बने हुये गणेशजी बिलकुल व्यर्थ होते हैं। इसीलिये किसी भी व्यर्थ और मूर्ख आदमी के लिए लोग गोबर गणेश कहते हैं।

जिस तरह गोबर के बने हुए गणेश किसी काम के नहीं होते, उसी तरह बिना ज्ञान का आदमी भी किसी काम का नहीं होता।

गोबरगणेश के अर्थ को और भी अधिक साफ करने के लिये मैं तुम्हें एक कहानी सुना रहा हूँ—

एक लड़का था। लड़के का नाम मोहन था। मोहन गणित में बहुत कमजोर था। कितना ही क्यों न समझाया जाय, गणित उसकी समझ में नहीं आता था।

एक दिन सवेरे के बाद का समय था। मोहन का बड़ा भाई उसे गणित का एक सवाल समझा रहा था। उसने उसे कई बार समझाया, पर उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया।

आखिर बड़े भाई ने चिढ़कर कापी फेंकते हुए कहा—"तुम गोबरगणेश हो। तुम्हें कुछ नहीं आता। तुम्हारी समझ में सवाल कभी नहीं आयेगा।"

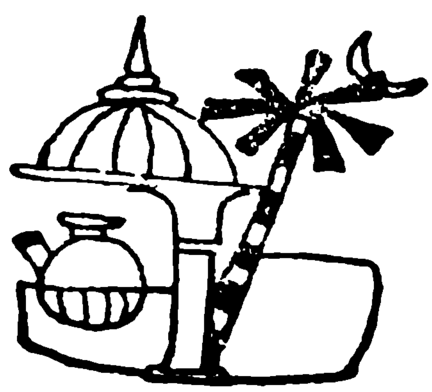
मोहन अपने बड़े भाई की ओर देखने लगा। उसने भाई की ओर देखते-देखते कहा—"मैं गोबर-गणेश हूँ ?"

बड़े भाई ने उत्तर दिया—"बिलकुल गोबरगणेश हो। गोबरगणेश और कहते किसे हैं ? जिसे कुछ नहीं आता, उसी को तो लोग गोबरगणेश कहते हैं।"

मोहन ने उत्तर तो कुछ न दिया, पर वह आश्चर्य के साथ अपने भाई की ओर देखने लगा।"

प्रमीला कहानी सुनकर प्रसन्न हो उठी। उसने अपने पिता से कहा—"पिताजी, मैं गोबरगणेश का अर्थ समझ गई, बिलकुल समझ गई।"

पिता ने कहा—"तो क्या इसके लिये मैं तुम्हारी प्रशंसा करूँ !"



तीन तेरह



एक व्यापारी था। व्यापारी का नाम रामलाल था। रामलाल के कुटुम्ब में वह, उसकी पत्नी, उसके चार लड़के और चारों लड़कों की बहुएँ थीं। बड़ा परिवार होने पर भी खाना-पीना एक में ही होता था, काम-काज भी सम्मिलित था। कुटुम्ब के सब लोग आपस में मिल-जुलकर रहते थे।

पर जब से रामलाल के घर में छोटे लड़के को

ू का आगमन हुआ, तब से घर में कलह और मत-
द की आग पैदा हो उठी। पहले तो बात कहा-सुनी
। तक रही, फिर अलगाव पर भी आ गई।

पहले तो छोटा लड़का अलग हुआ, फिर दूसरा
आ, फिर तीसरा भी अलग हो गया। केवल बड़ा
ड़का रामलाल के साथ रह गया।

खाना-पीना तो अलग हो ही गया, काम-काज भी
लग हो गया।

अलगाव होने पर भी छोटे लड़के की बहू शान्त
हीं रहती थी। वह आये दिन खटपट किया ही करती
ी।

एक दिम छोटे लड़के की बहू ने अपनी सास से
फिर खटपट की, तो रामलाल ने उसे सुनाते हुए
कहा—"बड़ी कुलछनी है। जब से आई है, सब कुछ
तीन तेरह कर दिया।"

रामलाल के छोटे लड़के के कानों में भी यह बात
पड़ी। उसने अपने पिता से पूछा—"क्या तीन तेरह
कर दिया ? मैं भी तो सुनूं।"

रामलाल ने उत्तर दिया—"घर में प्रवेश करते
ही तुम्हें अलग कर दिया। दो भाई और अलग हो
गये। रोटी-पानी तो अलग हो ही गई, काम-काज भी

अलग हो गया। बसा हुआ घर बरबाद हो गया। काम-काज चौपट हो गया। इसी को तो तीन तेरह कहते हैं।"

अपने पिता की बात सुनकर छोटा लड़का मौन रह गया, क्योंकि उसके पिता के कथनानुसार यह बात तो सच थी ही कि उसकी बहू ने घर में प्रवेश करते ही तीन तेरह कर दिया था।



गाँठ का पूरा



अटल ने कहा—"कमल गाँठ का पूरा है। वह नया बंगला नहीं खरीदेगा, तो क्या हम-तुम खरीदेंगे?"

विमल बोल उठा—"तुम कैसे जानते हो, कमल गाँठ का पूरा है?"

अटल ने उत्तर दिया—"कमल की तीन-तीन कपड़े की दुकानें हैं। पैट्रोल पम्प अलग से हैं। हजारों की मासिक आमदनी है। गाँठ का पूरा वह नहीं होगा, तो

कौन होगा ?"

विमल बोला—"हाँ, गाँठ का पूरा तो है, पर बड़ा मक्खीचूस है। खाने-पीने में कंजूसी तो करता ही है, कभी किसी को दान में भी एक छदाम नहीं देता।"

अटल ने प्रश्न किया—"कमल के मक्खीचूस होने की बात तुम्हें कैसे मालूम हुई ?"

विमल ने उत्तर दिया—"दयानन्द हाई स्कूल के लड़के अनाथ बच्चों के लिए सुमित्रा में चैरिटी-शो कर रहे थे, उन्होंने टिकटों की एक कापी मुझे भी बेचने के लिए दी थी।

मैं जब टिकट बेचने के लिए कमल के पास गया, तो उसने लेने से साफ इनकार कर दिया, कहा—"भाई, मुझे क्षमा करो, आजकल काम-काज बहुत घाटे में चल रहा है।"

एक टिकट के लिए काम-काज के घाटे की बात करना मक्खीचूस नहीं तो और क्या है ?"

अटल मन-ही-मन सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते कहा—"तब तो यही कहना पड़ेगा कि कमल गाँठ का पूरा तो है, पर बड़ा मक्खीचूस भी है।"

चाँद का टुकड़ा



महेश दो-तीन वर्ष से अपनी पुत्री के विवाह के लिए वर की खोज कर रहा था। उसने कई बड़े-बड़े शहरों की खाक छानी, बहुत-से लोगों से भेंट-मुलाकात की, पर उपयुक्त वर न मिला।

महेश चिंतित हो उठा। वह सोचने लगा, अब क्या किया जाय, कहाँ जाकर वर की तलाश की जाए ?

दोपहर के बाद का समय था। महेश सोच-विचार

में पड़ा था। सहसा उसके कानों में पोस्टमैन की आवाज पड़ी। पोस्टमैन उसे एक चिट्ठी देकर चला गया।

चिट्ठी महेश के एक मित्र की थी। उसने चिट्ठी में एक वर का पूरा पता लिखा था। पता वाराणसी का था।

महेश उसी दिन वाराणसी के लिए रवाना हो गया।

दो-तीन दिनों बाद महेश लौटकर घर आया। उसने घर में प्रवेश करते ही उमंग-भरे स्वर में अपनी पत्नी से कहा—"मुँह मीठा कराओ, तो खुशखबरी सुनाऊँ ?"

पत्नी ने महेश की ओर देखते हुए कहा—"पहले सुनाओ तो, मुँह मीठा तो होगा ही।"

महेश ने पत्नी की ओर देखते हुए कहा—"भगवान् ने सुन ली। जैसी लड़की है, वैसा ही लड़का भी मिल गया। लड़का क्या है, चाँद का टुकड़ा है, हीरा है।"

महेश अपनी बात समाप्त करता हुआ चारपाई पर बैठ गया। उसने बैठते हुए कहा—"कुछ खिलाओ तो, बड़े जोर की भूख लगी है।"

पत्नी बोली—"खिलाती हूँ। लड़के के बारे में कुछ और तो बताओ।"

महेश ने उत्तर दिया—"क्या बताऊँ ? लड़का पढ़ा-लिखा है, कमाऊ है, स्वस्थ है। सुन्दर तो इतना है कि चाँद का टुकड़ा-सा लगता है। मैं विवाह पक्का कर आया हूँ।"

महेश की बात सुनकर पत्नी मुसकरा उठी, रह-रहकर मुसकराने लगी।

रंगा सियार

शिवकुमार एक युवक था। उसने संस्कृत लेकर एम०ए० पास किया था। वह बड़े धार्मिक विचार का था। प्रतिदिन पूजा-पाठ करता था, साधु-महात्माओं में भक्ति भी रखता था। जो भी कोई साधु दरवाजे पर आ जाता था, उसे भोजन अवश्य कराता था। पर शिवकुमार ढोंगी नहीं था। वह सच्चाई, ईमानदारी और मेहनत में विश्वास करता था। सच बात तो यह है कि वह सच्चाई और मेहनत को ही ईश्वर की भक्ति समझता था।

पूरी बस्ती में यह बात जोरों से फैली हुई थी क शिवकुमार बड़ा ई वर-भक्त है। वह साधु-महात्माओं की खुले दिल से सेवा भी किया करता है।

फलस्वरूप शिवकुमार के पास प्रायः गरीब लोग सहायता के लिए पहुँचा करते थे। बस्ती में जो भी साधु-फकीर पहुँचता, वह शिवकुमार के दरवाजे पर अवश्य जाता था।

सवेरे के दस बज रहे थे। शिवकुमार खा-पीकर

ापने काम पर जा रहा था। वह जब घर से बाहर नकला तो दरवाजे पर एक साधु दिखाई पड़ा। साधु ीचे से लेकर ऊपर तक भभूत लगाये हुए था। उसके सर पर बड़े-बड़े बाल और कमर में लँगोटी थी। वह ाथ में चिमटा लिए हुए था। पूरा नागा बाबा-सा ाग रहा था।

साधु शिवकुमार को देखकर बोल उठा—"अलख नरंजन! मुझे भोजन चाहिए।"

शिवकुमार ने बड़े आदर से साधु को प्रणाम कर उसकी ओर एक रुपये का नोट बढ़ाकर कहा—लीजिए महाराज, मुझे जल्दी है, काम पर जाना है।"

साधु बोला—"पर मुझे भोजन चाहिए। मैं ुम्हारा नाम सुनकर आया हूँ। इससे क्या हो सकता ? यह तो चरस के लिए भी काफी नहीं है।"

शिवकुमार ने जबाब दिया—"महाराज, इस समय ससे अधिक नहीं हो सकता। लीजिए, मुझे जल्दी ।"

साधु बिगड़ उठा। वह क्रोध के स्वर में बोला—'मैं तेरे द्वार पर खड़ा हूँ और तू कह रहा है, मुझे गल्दी है! मुझे अच्छी तरह भोजन करा, नहीं तो मैं ुझे शाप दे दूँगा।"

शिवकुमार ने नीचे से लेकर ऊपर तक साधु को देखा और देखते-ही-देखते कहा—"महाराज, मैं न शाप से डरता हूँ, न वरदान से प्रसन्न होता हूँ। केवल अपने कर्तव्य का पालन करता हूँ। लेना हो, तो लीजिए। नहीं तो मैं जा रहा हूँ।"

साधु ने घूरते हुए शिवकुमार के हाथ से नोट ले लिया, टुकड़े-टुकड़े करके उसके सामने फेंक दिया। फिर क्रोध के स्वर में कहा—"तुम मुझे नहीं जानते। मैं एक का एक लाख बना सकता हूँ।"

शिवकुमार को भी क्रोध आ गया। उसने क्रोध-भरे स्वर में कहा—"आप कुछ नहीं कर सकते। आप की पहचान हो गई। साधु-महात्मा भी कहीं क्रोध करते हैं? आप जैसे रंगे सियार ही तो साधु-महात्माओं के नाम को कलंकित करते फिरते हैं। आपको पता है, आपने जो नोट फाड़कर फेंक दिया है, उसे मैंने पसीने की बूँदें टपकाकर पैदा किया था। जो मेहनत का अपमान करता है, भले ही वह ईश्वर क्यों न हो, मेरी दृष्टि में कुछ नहीं है।"

शिवकुमार वेग से आगे बढ़ गया। साधु खड़ा-खड़ा उसकी ओर देखता रहा, देखता रहा।

रँगे हाथ

कमलेश नगर निगम के दफ्तर में काम करता
काम था, जमादारों को काम पर लगाना, उनकी
की करना और उनकी अवनति करना। कमलेश
व का बड़ा लालची था। बिना दस-बीस ऐंठे
जमादार का कोई काम नहीं करता था।
आये दिन उलट-पलट किया ही करता था।
किसी को कहीं भेज देता, तो कभी किसी को
काम पर लगा देता। जमादार और जमादारिनें
ी जी-हजूरी करती थीं। जेब भी उसकी खूब
होती थी। रोज दो-चार की नहीं, पचासों की
दनी होती थी।

आखिर बात बड़े जोरों से फैली। फैलते-फैलते
चार विभाग में पहुँची, फलस्वरूप भ्रष्टाचार
ग के अधिकारी पीछे लग गये। सवेरे के आठ
रहे थे। कमलेश जमादारों से घिरा खड़ा था।
दिन उसने कई जमादारों से रिश्वत में रुपये लिये
उसकी जेब में लगभग सौ रुपये थे, जो दस-दस

के नोटों की शक्ल में थे। कुछ नोटों पर निशान भी बने हुए थे। वे निशान अधिकारियों ने बनाये थे। उन्होंने उन नोटों को जमादारों को इसलिये दिया था कि वे रिश्वत में कमलेश को दें और कमलेश सरलता से पकड़ा जा सके।

कमलेश जमादारों से बातचीत कर ही रहा था कि अधिकारियों ने पहुँचकर उसे पकड़ लिया। तलाशी लेने पर उसकी जेब से सौ रुपये निकले। उस की जेब से वे नोट भी निकले, जिनपर निशान बने हुए थे।

जमादारों की गवाही-साखी के बाद कमलेश पुलिस के हवाले कर दिया गया।

खबर कमलेश के घर पहुँची। कमलेश का पिता बड़ा दुःखी हुआ। वह एस०पी० की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने हाथ जोड़कर एस०पी० से कहा, "साहब, आप कमलेश पर मुकदमा न चलायें। उसे छोड़ दें।"

एस०पी० ने उत्तर दिया—"यह कैसे हो सकता है ? कमलेश रंगे हाथ पकड़ा गया है। मैं उसे छोड़ नहीं सकता। उसपर मुकदमा अवश्य चलेगा।"

कमलेश का बाप अपना-सा मुँह लेकर घर लौट गया।

दूसरे दिन अखबारों में यह खबर छपी—नगर म का कर्मचारी गिरफ्तार ! वह जमादारों से वत लेते हुये रँगे हाथ पकड़ा गया ।

लाखों लोगों ने यह खबर पढ़ी और हर एक ने दोहराया—नगर निगम का कर्मचारी गिरफ्तार । ादारों से रिश्वत लेते रँगे हाथों पकड़ा गया ।

उल्टी गंगा

रामलाल के घर में वह, उसकी पत्नी और उसकी माँ थी। नया-नया विवाह हुआ था। वह अपनी गृहस्थी बड़े उत्साह के साथ चला रहा था।

रामलाल एक दफ्तर में काम करता था। पाँच सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था। पत्नी के आने से पहले सारा काम-काज माँ देखती थी, पर जब पत्नी आई, तो उसने सारा काम-काज अपने हाथ में ले लिया। घर का खर्च भी उसके हाथ में चला गया। माँ को केवल पूजा-पाठ से मतलब रह गया।

पर फिर भी बेटे और बहू के ऊपर माँ का रोब था। दोनों में से कोई भी माँ के विरुद्ध काम करने का साहस नहीं करता था।

हरितालिका व्रत का दिन था। बहू अपने कमरे में एक थाल में मिठाई और कुछ नये कपड़े और फल सजाकर रख रही थी। रामलाल की माँ ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—"बहू, यह सब चीजें कहाँ भेज रही हो ?"

रामलाल की पत्नी ने उत्तर दिया—"अपनी माँ के घर। मेरी छोटी बहिन है न! यह सब चीजें उसी के लिए भेज रही हूँ।"

रामलाल की माँ सोचने लगी। उसने सोचते-सोचते कहा—"आज हरितालिका व्रत का दिन है। तुम्हारा नया-नया विवाह हुआ है। रीति और परम्परा के अनुसार आज तुम्हारे पीहर से सामान आना चाहिए, पर तुम तो ससुराल से सामान भेजकर उल्टी गंगा बहा रही हो।"

बहू ने कुछ उत्तर न दिया। रामलाल की माँ सोचने लगी, मन-ही-मन सोचने लगी।

रामलाल की माँ ने सोचते-सोचते पुनः कहा—"देखो, मैं तुम्हें सामान भेजने से मना नहीं कर रही हूँ। तुम एक सप्ताह के बाद यह सारा सामान नौकर के साथ अपनी माँ के घर भेज देना। पर आज भेजना ठीक नहीं है। आज भेजने से तुम्हारे पीहर वालों की अप्रतिष्ठा तो होगी ही, मेरी बदनामी भी होगी। जो सुनेगा, वह यही कहेगा, रामलाल की पत्नी उल्टी गंगा बहाती है।"

रामलाल की पत्नी ने दबे स्वर में उत्तर दिया—"मुझसे भूल हुई, माँजी! मुझे क्षमा कर दीजिए।"

रामलाल की माँ ने प्रेम-भरे स्वर में कहा—"क्षमा माँगने की क्या बात है ? मेरे कहने का मतलब तो केवल इतना ही है कि नियमों को तोड़कर उल्टी गंगा नहीं बहाना चाहिए। इससे समाज में अप्रतिष्ठा होती है।"

बहू पढ़ी-लिखी थी। उसने सोचते हुए कहा—"कभी-कभी नासमझी के कारण उल्टी गंगा बह जाती है, माँजी ! पर भय किस बात का ? जन्हु मुनि की तरह आप तो मौजूद ही हैं। जब कभी उल्टी गंगा बह भी जाएगी, आप उसे समेटकर अपने जूड़े में तो बाँध ही लेगी।"

रामलाल की माँ खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने हँसते हुए कहा—"तू मुझे जन्हु मुनि कह रहा है ? कहाँ जन्हु मुनि और कहाँ मैं !"

बहू ने उत्तर दिया—"मेरे लिए तो आप जन्हु मुनि से बड़ी हैं, माँजी !"

रामलाल की माँ की आँखें आनन्द के आँसुओं से भर गईं। आँसू की बूँदें टपटप गिरने लगीं, रह-रह कर गिरने लगीं।

□□